आठवां सर्ग : परिवेश की सजगता में भाषा का मणिकांचन संयोग

डा मोहन लाल जाट
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर-हिन्दी
स्नातकोत्तर राजकीय कन्या महाविद्यालय
सेक्टर-11,चंडीगढ़

स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों और हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में डा कृष्णदत्त पालीवाल का सार्थक और सटीक विश्लेषण है –" हिन्दी के समकालीन नाटक-साहित्य में यथार्थ-अन्वेषी सृजनात्मकता के मोड़ों और प्रवृत्तियों के सार्थक संकेत साफ़ तौर पर उभरकर सामने आए हैं.....नाटक को अभिनय,संगीत, नृत्य तथा अन्य दृश्य कलाओं से समन्वित होना पड़ता है:इस अर्थ में नाटक एक जटिल विधा है।साथ ही निरन्तर जटिल से जटिलतर होते युग के भाव-बोध को दर्शक के सामने नाटयप्रस्तुतीकरण में सहज सम्प्रेषणीयता से पहुँचाने की समस्या भी विकराल रुप धारण कर उठी है।एक ओर हिन्दी का पिछड़ा रंगमंच और दूसरी ओर सहज जन-बोधगम्य भाषा का सवाल हिन्दी के नाटककार को नाट्य-सृजन में लगातार ललकारकर तोड़ता रहा है.....फ़िर भी पिछले दो दशकों में हिन्दी-नाटक में 'प्रयोग' की चर्चा सार्थक रुप में सामने आई हैं।नाटक में 'नयेपन' या 'प्रयोगशीलता' ने नयी नाट्य-भूमि को खोजने और रचने की ओर कदम उठाया है।इस प्रयत्न से इस दौर में हिन्दि नाटक का जैसे नया जन्म हुआ हैं। नाटक का नयी रंग-चेतना के बहुस्तरीय कार्यकलाप से एक जीवन्त संबंध तो बना ही है-वह रंगमंच की अपनी दुनिया को पूरी शक्ति से जीने और रचने की ओर भी प्रवृत्त हुआ है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास- डा नगेन्द्र,पृष्ठ-746-747)

इधर स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों की पंक्ति में प्रयोगधर्मी नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में कथ्य,पात्रान्वेषण,परिवेश और उद्धेश्य को नूतन भाषा-शैली में पृथक ढंग से दर्शाने की सफ़ल हिमाकत की है।मोहन राकेश की अचानक मृत्यु के बाद हिन्दी नाटक में उत्पन्न निराशा-पराजय को डा लक्ष्मीनारायण लाल और डा शंकर शेष के बाद सुरेन्द्र वर्मा के नाटय प्रयोग हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में एक नई अलख जगाते,नाटक तथा रंगमंच का नवीन घनिष्ठ संबंध दर्शाते,भाषा एवं परिवेश के प्रति सजगता का अहसास और उसके बीच अंत:संबंधों की पूरकता को उसकी समृद्धि में अंकित करते प्रतीत होते हैं।अपनी पहली नाट्य कृति ' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरणा तक' से हिन्दी नाट्य क्षेत्र में धूमकेतु की तरह छाए वर्माजी ने आगे भी 'आठवां सर्ग' एवं 'सेतुबंध,नायक खलनायकविदूषक,द्रौपदी' (तीन नाटक) जैसी सशक्त अभिनय की रचनाएं देकर हिन्दी नाटक तथा रंगमंच को समृद्ध बनाया। भारतीय इतिहास और पुराण से लेकर आधुनिक जीवन की आधुनिकता को कथ्य एक नूतन दृष्टि से नव चेतना को हिन्दी रंगमंच पर सफ़लतापूर्वक उतारा है।

किसी भी कृति के कथ्य तथा उद्देश्य की सफ़लता का रंग उसके परिवेश पर निर्भर होकर चढ़ता है। उदात्त कथ्य की प्रस्तुति के लिए,उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिवेश का चयन भी उदात्तता से करना पड़ता है और फ़िर इन सभी की संवाहिका भाषा के शब्दों का चयन भी उसी के अनुरुप करना औंखली में दिए सिर समान है। उदात्ता में सर्वांगीणता का होना अत्यावश्यक है,नहीं तो वह कृति सामाजिक तथा आलोचक की निंदा का शिकार होने से नहीं बच सकती है।

'आठवां सर्ग' में भारतीय इतिहास के गुप्तकालीन परिवेश को सजगता से सुरेन्द्र वर्मा ने सर्वथा अनुकूल भाषा-शैली में साक्षात अवतरित किया है। नाटक के प्रांरभ में ही सुरम्य वातावरण में कीर्तिभट्ट-प्रियंवदा आपसी नमस्कार करते हैं और तत्पश्चातकीर्तिभट्टक्षिप्रा नदी के किनारे के स्वप्न में (गोधूलि वेला में) खो जाता है:कीर्तिभट्ट-'गोधूलि की वेला भी.....शिप्रा का किनारा.....अपने-अपने घौंसलों को लौट रहे पक्षियों का कलरव्.....।किनारे से टकराती हुई लहरों का सरस संगीत्.....वातावरण में सुगंधि थी-नवमलिका की कलियों की,प्रणय की,मिलन की...॥तभी देखा कितुमचंपक के झुरमुटों के बीच.....हाथ में लीला-कमल लिये...।मंद मंथर गति...सकुचाती...लजाती...।' यहं क्षिप्रा के किनारे का गत्यात्मक शब्द-चित्र लेखक ने रंगमंच पर चलते-चलते उभार दिया है,जो कला का जोखिम लेना है। प्रेम के लिए इससे अच्छा परिवेश और भला कहां ?

गुप्त राजाओं की राजधानी उज्जैन में कोलाहल हर दिन गोष्ठियों-सभाओं के रुप में परवान चढ़ता रहता था। राजकवि कालिदास भला ऐसे में रचना का प्रणयन कैसे कर पाते ? इस हेतु कालिदास ने क्षिप्रा का किनारा ही चुना,जहांउगते-ढलते सूर्य के साथ प्रकृति साहित्य में प्रविष्ट हो सके। कीर्तिभट्ट कहता है:'लेकिन नहीं.....राजधानी में कोलाहल होता है...हर दिन गोष्ठियां और सभाएं की जाती है।.....मन एकाग्र नहीं हो पाता।.....भीतर से निकलते तो उपवन में आ जाते! उपवन से निकलते तो बाहर वन में जा पहुँचते.....।प्रात:काल देखता कि उषा की लाली परख रहे हैं,आधी रात को देखता कि उजली चाँदनी में टहल रहे हैं।' प्रकृति को जीने वाले कालिदास आज क्यों इतने प्रकृति की वास्तविकता के सजल कवि बने हुए है? यहस्वत: स्पष्ट है। सभा में कालिदास के द्वारा 'कुमारसंभव'के 'आठवेंसर्ग' के सस्वर पाठ करते समय सभी सभासद मंत्रमुग्ध थे लेकिन जैसे ही उसमें शिव-पार्वती की काम-क्रीड़ा का चित्रण आया,सभी जन एक सुर में कालिदास की भर्त्सना करने लगे और कालिदास अपने मिलने वाले सम्मान के बदले मिले इस अपमान को भूलने के लिए एकांत क्षिप्रा के किनारे चले आए।लेखक ने स्वयं कालिदास के मुख से यह सत्य स्वीकरा है-" नगर के बाहर चला गया था...शिप्रा के निर्जन तट पर...गहरा अँधेरा था वहाँ और गहरी शांति...ऊपर घने बादलों में चंद्रमा का हल्का-सा आभास और सामने बहुत दूर पर्वत श्रेणियों के धुँधले उतार-चढ़ाव्...हवा रुकी थी।पत्ता तक नहीं हिलता था।लहरें भी निश्चल थीं। ... बस,कभी-कभी बालू के छोटे-छोटे कगार नदी में धसक जाते थे।चौंककर वृक्षों की ऊपरी शाखों पर कोई पक्षी पर फ़ड़फ़ड़ाता,चहचहाता...और फ़िर मौन,फ़िर नीरवता...।" आज भी प्रकृति की यह शरण कालिदास के अन्तर्बाह्य संघर्ष को समकालीनता दे रही है लेकिन आज लेखक की प्रकृति-शरण कहां?

यौवन की सहजात काम-लालसा, तृप्ति हेतु समागम और फ़िर प्रथम समागम के सुखद अहसास को सुरेन्द्र वर्मा ने अनुसूया-प्रियंवदा की रहस्य-रोमांच भरी बातचीत में उत्सुकतापूर्वक दिखाया है।दोनों कालिदास-प्रियंगु मंजरी के रात्रिकालीन आलिंगन,काम-कलाप तथा शयन-कक्ष का वर्णन अभिनयपूर्वक करती है जो अहसास हम भी पढ़ते या देखते या सुनते समय कर सकते हैं-

'प्रियंवदा:द्वार के खुलते ही सुगन्धि का एक झौंका-सा निकलेगा।एक कुमारी कन्या के नासा-रन्ध्रों के लिए यह गंध बिलकुल अनजानी होगी,पर हे मेघ-से काले कजरारे केशोंवाली!तुम रुकना नहीं भीतर चली जाना।

अनुसूया:फ़िर?

प्रियंवदा:गवाक्ष बन्द,हल्का अँधेरा!...पलंग के पास कुछ खाली चसक होंगे।उन पर दो युगल अधरों के स्पर्श जैसे अभी तक कसमसा रहे हैं।

अनुसूया:ऐसा?
प्रियंवदा:कुछ देर चुपचाप उस शैय्या को परखना।उस पर अधखिली कलियाँ बिखरी होंगी-ग्लान्…दोहरी हो चुकी पंखुरियों को हल्के से छूना,तो दो शरीरों के तृप्त दबाव का अहसास होगा।
अनुसूया:सचमुच?
प्रियंवदा:शुभ्र-श्वेत चादर पर यहाँ-वहाँ सिकुड़नें होंगी।एक ओर कुरंटक पुष्पों की माला पड़ी होगी-प्रगाढ़ आलिंगन में मसली हुई।सिरहाने एक कर्णफ़ूल होगा,पैताने टूटी मेखला।
अनुसूया"बेचारी !
प्रियंवदा:कुछ पल चुपचाप खड़ी रहना,तो धीरे-धीरे कई ध्वनियाँ उभरेंगी।
अनुसूया:जैसे ?
प्रियंवदा:वस्त्रों की सरसराहट्…आभूषणों की झंकार,साँसों की तीव्रता…बाहों का कसाव।"
कालिदास-प्रियंगु मंजरी के कामकेलि का यह सजग चित्रण प्रत्येक नायक-नायिका(युवाओं) के लिए प्रथम समागम हेतु उपदेश तथा सुरम्य उद्बोधन है,भले ही इसमें संश्लिष्टता मेंलिपटी अश्लीलता ही क्यों न हो।
प्रेम में उन्मत्त नारी प्रेम और प्रेमी को पाने के लिए जहाँ परिवार-समाज की सभी मर्यादाएँ लाँघ जाती है,वहीं वही नारी अपनी मर्यादा पर प्रतीकात्मक रुप में आँच को भी नहीं सह पाती है और सर आम जाने से घबराने लगती है,लज्जित महसूस करती है। यही तो भारतीय संस्कृति की मर्यादा है जिसे हमें आगे बढ़ाना होगा।जब कालिदास 'कुमारसंभव' के 'आठवां सर्ग' का चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य की सभा मेंसस्वर पाठ करता है तो उसकी प्रिया प्रियंगुमंजरी लज्जित होती दिखती है,क्योंकि सब उसी की तरफ़ नजर गढ़ाए होते है। प्रियंगु कालिदास से कहती है प्रेम भरे अन्दाज में-"यह क्यों नहीं कहते कि मुझे लज्जित करने का आनंद कहाँ से मिलता?…अब मैं कैसे जाऊँ राजमण्डप में?……माता-पिता,परिवार के कुल संबंधी,गुरुजन,सब सखियाँ,सहेलियाँ,निम्न और उच्च सारे पदाधिकारी,सामन्त और माण्डलिक,संभ्रान्त नागरिक और उनकी धर्मपत्नियाँ,दौवारिक,प्रतिहार और दासियाँ-सभा में उपस्थित एक-एक व्यक्ति समझ जाएगा कि काव्य की यह उमा(संकेत सहित) वह बैठी है…सामने!"
लोकोत्सव लोक की खुशी के ध्योतक होते हैं। भारतीय जनमानस के चेतन-अचेतन में सदियों से जमे लोक-विश्वासों का भी 'आठवां सर्ग' में लेखक ने बखूबी चित्रण किया है। सभा में कालिदास के सम्मान के बजाय होने वाले अपमान को लेखक ने ईमानदारी से खिंचा है लेकिन इसके पूर्व उज्जैन की फ़िजा में लोक-उत्सव 'मदनोत्सव' का चित्र कालिदास द्वारा प्रियंगु के सामने जिस मार्दवपूर्ण भाषा में खींचा गया है,वह श्लाघनीय बन पड़ा है।कालिदास:"आज मदनोत्सव है और उसे मनाने के लिए नगरवासी जैसे मदोन्मत्त हो उठे हैं…सामूहिक करतल ध्वनि और अकेले मृदंग का मधुर घोष……मर्दल का गुरु गंभीर गर्जन और चर्चरी की दूर-दूर तक गूंजनेवाली उन्मादिनी लय,उड़ती मालाएँ,बिखरे केशपाश,…श्रम से लाल हुए कपोल और माथे पर स्वेद-बिन्दु…महलों के गवाक्षों में मुखमंडल जड़े हुए…नीचे पिचकारी लिए ढीठ युवतियां और ऊपर से सोल्लास बरसता हुआ अबीर और गुलाल…ऐसा घना और निरंतर…कि दिशाएं तक धूमिल हो उठी हैं…।" कालिदास के ये कल्पनागर्भित उड़ान भरते शब्द हू-ब-हू वर्मा जी के अलावा किसकी बुद्धि की उपज हो सकते है?उज्जैन में मनाए जाने वाले उत्सवों-होली,मदनोत्सव,कामोत्सव और साहित्योत्सव-को सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक की पात्रा प्रियंवदा के मुख से बार-बार वर्णित करवाया है,जिसमें भले पुनरोक्ति हो लेकिन वह कथ्य की माँग भी है। कम शब्दों में सांकेतिक-आलंकारिक भाषा में प्रियंवदा

उत्साहपूर्वक कहती है-और फ़िर राजपथ पर ऐसी भीड़ है कि साँस को भी निकलने का रास्ता नहीं मिलता।एक तो कामोत्सव का कामना जगाने वाला दिन्…फ़िर 'अभिज्ञानशाकुंतलम' की स्वर्ण जयंती…फ़िर शासन द्वारा स्वामी का अभिनंदन्…।जैसे एक साथ एक ही दिन तीन-तीन त्योहार…तनिक बाहर निकलकर देख लोगों की चपलता से मानों वातावरण में भी तरंगे उठ रही हैं।"

गुप्त-साम्राज्य के 'स्वर्णिम काल' के पराक्रमी और संस्कृति-प्रेमी शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय साहित्य,संस्कृति,शासन और प्रजा-कल्याण की श्रीवृद्धि हुई ही,लेकिन उस समय धर्म,समाज और राजनीति में धीरे-धीरे दबे पाँव अव्यवस्था,ढोंग,भ्रष्टता जैसी विकृतियां भी पनपने लगी थी।साहित्य में ऊठापटक चरमोत्कर्ष पर थी आज की भाँति। लेखक कालिदास के 'कुमारसंभव' के 'आठवें सर्ग' के मूल्याँकन हेतु गठित समिति से आहत कालिदास की मनोभावना को यों प्रश्नात्मक-व्यंग्यमयी भाषा-शैली में उजागर करवाता है-"कालिदास:(चोट खाए स्वर में)मैं भी उन्हीं निर्णायकों के बारे में जानना चाहता हूँ,धर्मराज।वे वाड्मय के तो पंडित होंगे ही? नकाव्यशास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया होगा?संस्कृत के पूरे साहित्यिक इतिहास के जानकार होंगे?…उनका सौन्दर्य-बोध बहुत परिष्कृत होगा?दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होगी?…वे भाव प्रवण होंगे?संवेदनशील होंगे?उदार विचारवेत्ता होंगे?विशाल हृदय होंगे?…साहित्य-प्रेमी के जिस आदर्श रुप की कल्पना की ज सकती है,वह जैसे उनमें साकार हो उठा होगा?" यह आज के कलाकार की अन्त:पीड़ा भी है,जो सोचनीय है। उस समय के परिवेश को दुखी कालिदास के सामने स्वयं उसका आश्रयदाता चन्द्रगुप्त दुखी स्वर में यों प्रकट करता है-"कान खोलकर सुन लो कि धर्मगुरु केवल अश्लीलता की घोषणा से ही संतुष्ट नहीं होंगे।वे चाहते हैं कि तुम्हें कोई दंड भी मिलेऔर अगर ऐसा नहीं किया गया तो वे राजप्रासाद के सामने आमरण अनशन पर उतर आएंगे…(बलपूर्वक)प्राण दे देंगे अपने!…(क्षणिक विराम)शायद तुम्हें यह पता नहीं कि बंगेश्वर ने आस-पास के राजाओं के साथ मिलकर एक संघ बना लिया है और गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी है।शायद तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि सेनापति आम्रकार्दव के यहां रात के अँधेरे में संदिग्ध व्यक्ति आते-जाते देखे गए हैं।शायद तुम यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे और मंजरी के ब्याह से ब्राह्मण और क्षत्रिय-दोनों ही जातियों में असंतोष है और सेना के एक बड़े भाग पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है।" आज भी शासक की यही दुर्दशा है!

रंगमंचानुकूल भाषा में चित्रात्मकता,गत्यात्मकता,अभिनय और रंग-निर्देशों का होना अत्यावश्यक है।इधर के नाटककारों में यह सत्य कम फ़लीभूत दिखाई देता है लेकिन सुरेन्द्र वर्मा ने प्रियंगुमंजरी के माध्यम से उदासी,संशय,गर्वोक्ति के साथ रंगमंचीय दृष्टिकोण को हमारे समक्ष सार्थकता से प्रस्तुत किया है। कालिदास के सम्मान समारोह के बीच में अचानक गायब हो जाना रंगमंच पर उदासी के साथ जिज्ञासा को भी बढ़ा देता है-"प्रियंगु:(कुछ खोई हुई-सी)कैसा मनोहर दृश्य था…।रंगशाला के चारों ओर कलानुरागी नागरिकों की एक-पर-एक परतें…अंदर घुसने को आतुर मानवीय हिलोरें…और रंगशाला के भीतर उज्जयिनी का…भद्रलोक्…मंच पर सम्राट और सत्ता के पाँच प्रतीक्…अभिनंदनीय नाटककार का आसन खाली है। …वायु की गति वाला धावक कुटीर तक जाता है। ……लौटकर यही कहा जाता है कि…कविकुल गुरु का कोई पता नहीं!" यहां रंगमंचीय परिवेश की सजगता के साथ-साथ लेखकीय स्वातंत्र्य का परिवेश भी इंगित हो गया है। यहां से निकलकर कालिदास फ़िर अपनी क्षिप्रा के किनारे चले जाते हैं,जहां उनको अपनी लेखकीय सृजना की नव ऊर्जा और क्षमता मिलती है।शायद क्षिप्रा कालिदास और सुरेन्द्र वर्मा की लेखकीय

ऊर्जा,शांति,क्षमता का दिव्य-स्रोत है और शरण-स्थल भी। उसकी नीरवता के बीच ही लेखक की भाषा में इन्द्रधनुषी रंगोपयुक्त तीव्रता आ पाई है।
सारांशत: 'आठवां सर्ग' का परिवेश मुख्यतया उभरा है-स्वप्न रुप में,लोक विश्वासों-लोकोत्सवोंके रुप में,मन के अन्त:गह्वरों से निकलते संवेगों के रुप में,कालिदास-प्रियंगु मंजरी के काम-प्रणय के अंतरंग प्रसंगों में,कालिदास के सम्मान पूर्व की तैयारी में,अपमानित कालिदास की उद्वेलनपूर्ण स्थिति में,क्षिप्रा के प्रात:-संध्या समय के शान्त और कलरव से भरे किनारों के वर्णन में तथा गुप्त साम्राज्य की तत्कालीन पतनोन्मुखी स्थितियों के चित्रण में।इसके अलावा प्रियंगु के स्वप्नों की भयावहता तथा अपशकुन के प्रतीकों में लेखक ने लोक-विश्वासों को रेखांकित किया है। इन सभी दृश्यों को चाँदनी की भाँति मुकम्मल और उज्जवल बनाया है सुरेन्द्र वर्मा की ध्वनि,चित्र,लय,और गति युक्त भाषा ने। वाकई ''आठवां सर्ग' एक बारगी कालिदास के बाद सुरेन्द्र वर्मा जी की लेखनी का जीवंत संस्पर्श पाकर पुन: जीवंत हो उठा है। और जी उठा है वह परिवेश,जिसकी उत्कृष्ट कला के बीच भय,विद्रोह,ढोंग जैसा आद्रित आवरण था,जिसे कलाकार से लेकर शासक तक देख तो रहे थे लेकिन चुप थे -कथित आशंका के चलते,जैसा कि आज है।

सन्दर्भ और सहायक ग्रन्थ सूची:-

1 आठवां सर्ग-सुरेन्द्र वर्मा (1976)
2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना- डा मोहन लाल जाट
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास- डा नगेन्द्र
4 साठोत्तरी रंगमंचीय हिन्दी नाटकों का अनुशीलन- डा आभा त्रिवेदी

CGCTA